

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 11 अध्याय 27: देवार्चन-विधि

5 October 2026



उद्धव भगवान् श्रीकृष्ण से पूछते हैं कि एक भक्त को उनकी आराधना कैसे करनी चाहिए, और भगवान् स्नेहपूर्वक क्रियायोग का सम्पूर्ण माग सिखाते हैं — शरीर की शुद्धि, पवित्र प्रतिमा में उनकी उपस्थिति का आवाहन, पुष्प तथा अग्नि का अर्पण, और अन्त में पूर्ण समर्पण के साथ प्रणाम।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है, जो श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं तथा शिक्षाओं के माध्यम से एक भक्तिपूर्ण यात्रा है। पिछले प्रवचन में भगवान् ने राजा पुरुरवा के उर्वशी-वियोग से उत्पन्न शोक से जागरण की कथा सुनाई, और उन सन्तों की महिमा गाई जिनका संग मात्र आत्मा को बन्धन से मुक्त कर देता है। अब उस स्तुति से हृदय में उमड़े उद्धव, वह प्रश्न पूछते हैं जो प्रत्येक भक्त जानना चाहता है: उस भगवान् की, जिन्हें किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं, व्यावहारिक रूप से आराधना कैसे की जाए? श्रीकृष्ण, यहाँ गुरु तथा पिता के रूप में सम्बोधित होकर, चरण-दर-चरण उत्तर देते हैं — आत्मशुद्धि, वेदी या पवित्र प्रतिमा की तैयारी, प्रेमपूर्वक स्नान तथा शृंगार, भोग अर्पण, पावन अग्नि में भगवद्दर्शन, और अन्त में उनके चरणों में पूर्ण समर्पण।

अध्याय को जानकारो

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 11 (एकादश स्कन्ध)
- अध्याय: 27 (सप्तविंश प्रवचन)
- अध्याय शीर्षक: देवार्चन-विधि पर भगवान् श्रीकृष्ण का उपदेश
- प्रधान वक्ता: श्रीकृष्ण, उद्धव को उपदेश देते हुए; समस्त सुकदेव गोस्वामी द्वारा राजा परीक्षित को कहा गया
- प्रधान श्रोता: उद्धव; तथा राजा परीक्षित
- मुख्य स्थान: द्वारका, भगवान् के उद्धव के साथ संवाद में
- केन्द्रीय विषय: क्रियायोग — भगवान् की पवित्र प्रतिमा की आराधना की विधि: शुद्धि, आवाहन, स्नान, शृंगार, नैवेद्य, पावन अग्नि, प्रणाम, तथा ऐसी भक्तिपूर्ण आराधना का फल
- प्रधान श्लोक-सीमा: स्कन्ध 11, अध्याय 27, श्लोक 1-55
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

छब्बीसवें प्रवचन में, भगवान् ने बताया कि किस प्रकार राजा पुरुषोत्तम उर्वशी-वियोग से उन्मत्त होकर, अन्ततः अपने सच्चे स्वरूप को जागे और संसार का परित्याग किया। तब भगवान् ने सत्संग की महिमा गाई, जिसकी संगति आत्मा के गहनतम बन्धनों को शान्ति से विलीन कर देती है। यह अध्याय उसी स्तुति से आगे बढ़ता है, जब उद्धव भगवान् से उनकी साकार आराधना का पावन, व्यावहारिक मार्ग सिखाने की प्रार्थना करते हैं।

उद्धव का प्रश्न — पावन आराधना का मार्ग

भक्ति से भरकर, उद्धव ने भगवान् के समक्ष प्रणाम किया और उनसे क्रियायोग — वह आराधना-मार्ग जिससे उनके भक्त, सात्वत, उनकी पूजा करते हैं — समझाने की प्रार्थना की। उन्होंने स्मरण किया कि नारद जैसे ऋषि तथा व्यास और बृहस्पति जैसे आचार्यों ने सदैव इस आराधना को मनुष्य के लिए परम कल्याणकारी घोषित किया है, जो सर्वप्रथम स्वयं भगवान् के मुख से ब्रह्मा को प्राप्त हुई। उन्होंने कहा कि यह मार्ग समाज के हर वर्ग तथा जीवन की हर अवस्था के लिए उपयुक्त है, और विनम्र जनों के लिए भी कल्याण का सच्चा पथ है। उन्होंने कमल-नयन भक्त-रक्षक से प्रार्थना की कि वे प्रेमपूर्वक यह मार्ग सिखाकर कर्म के बन्धनों को सदा के लिए शिथिल कर दें।

श्रीउद्धव उवाच

क्रियायोगं समाचक्ष्व भवदाराधनं प्रभो ।

यस्मात्त्वां ये यथार्चन्ति सात्वताः सात्वतर्षभ ॥ १ ॥

*śrī-uddhava uvāca kriyā-yogaṁ samācakṣva bhavad-ārāadhanam prabho yasmāt tvāṁ ye
yathārcanti sātvatāḥ sātvatarṣabha*

अर्थ: उद्धव ने कहा: हे सात्वतों में श्रेष्ठ प्रभो, कृपया मुझे वह क्रियायोग समझाइए, जिस आराधना-विधि से आपके भक्त आपकी पूजा करते हैं, तथा यह भी कि वे उस-उस प्रकार से आपकी पूजा क्यों करते हैं। (स्कन्ध 11, अध्याय 27, श्लोक 1)

अनेक द्वार, एक ही आराधना

भगवान् ने उत्तर आरम्भ करते हुए कहा कि वे इस अनन्त विषय को संक्षेप में तथा यथाक्रम सिखाएँगे। उनकी आराधना, उन्होंने कहा, तीन प्रकार से की जा सकती है — वैदिक विधि से, तान्त्रिक विधि से, या दोनों के मिश्रण से — और मनुष्य को उसी विधि से उनकी पूजा करनी चाहिए जो उसके हृदय को सचमुच प्रिय हो, भगवान् को अपना गुरु तथा पिता मानते हुए, और बिना किसी छल के उनके निकट आते हुए।

अर्चायां स्थण्डिलेऽग्नौ वा सूर्ये वाप्सु हृदि द्विजः ।

द्रव्येण भक्तियुक्तोऽर्चेत् स्वगुरुं माममायया ॥ ९ ॥

*arcāyāṁ sthaṇḍile 'gnau vā sūrye vāpsu hṛdi dvijaḥ dravyeṇa bhakti-yukto 'rcet sva-gurum mām
amāyayā*

अर्थ: द्विज को चाहिए कि वह मुझे, अपने गुरु को, निष्कपट भक्ति सहित उपयुक्त सामग्री से पूजे — चाहे पवित्र प्रतिमा में, प्रतिष्ठित वेदी में, पावन अग्नि में, सूर्य में, जल में, या अपने ही हृदय की गुहा में। (स्कन्ध 11, अध्याय 27, श्लोक 9)

वैभव से बढ़कर प्रेम

भगवान् ने तब आराधना की पूर्व-तैयारी बताई: शरीर की शुद्धि, मिट्टी तथा पावन भस्म से स्नान करते हुए वैदिक तथा तान्त्रिक मन्त्रों का जाप, और एक ऐसा व्रत लेना जो पूर्व कर्मों के दोष मिटा दे। उन्होंने प्रतिमा के आठ प्रकार बताए — पाषाण, काष्ठ, धातु, मिट्टी, चन्दन, चित्र, बालू, या केवल मन में ध्यान की गई — चल तथा अचल, प्रत्येक के आवाहन का अपना नियम। उन्होंने कहा कि जिसके पास साधन हों वह बहुमूल्य सामग्री से पूजा करे, किन्तु निष्कपट भक्त जो कुछ सुलभ हो उसी से पूजा कर सकता है — क्योंकि हृदय की गुहा में तो आराधना केवल प्रेम से ही होती है।

स्नानालङ्करणं प्रेष्ठमर्चायामेव तूद्धव ।

स्थण्डिले तत्त्वविन्यासो वद्वावाज्यप्लुतं हविः ॥ १६ ॥

सूर्ये चाभ्यर्हणं प्रेष्ठं सलिले सलिलादिभिः ।

श्रद्धयोपाहृतं प्रेष्ठं भक्तेन मम वार्यपि ॥ १७ ॥

snānālāṅkaraṇaṁ preṣṭhaṁ arcāyām eva tūddhava sthaṇḍile tattva-vinyāso vahnāv ājya-plutaṁ haviḥ sūrye cābhyarhaṇaṁ preṣṭhaṁ salile salilādibhiḥ śraddhayopāhṛtaṁ preṣṭhaṁ bhaktena mama vāry api

अर्थ: हे उद्धव, प्रतिमा की पूजा में स्नान तथा प्रेमपूर्ण शृंगार मुझे अत्यन्त प्रिय है; वेदी में देवताओं की यथास्थान स्थापना; पावन अग्नि में घृत से सिक्त आहुतियाँ; सूर्य के समक्ष यथोचित सम्मान; जल में जल का ही अर्पण। किन्तु मेरे भक्त द्वारा श्रद्धा से अर्पित थोड़ा-सा जल भी मुझे अत्यन्त प्रिय है। (स्कन्ध 11, अध्याय 27, श्लोक 16-17)



भगवान् की प्रतिमा की पूजा में स्नान तथा प्रेमपूर्ण शृंगार उन्हें अत्यन्त प्रिय है, और श्रद्धा से अर्पित थोड़ा-सा जल भी प्रेमरहित प्रचुर भेंट से अधिक उन्हें भाता है (श्लोक 16-17)।

वेदी की तैयारी और भगवान् का आवाहन

कुशासन पर शुद्ध होकर, प्रतिमा के सम्मुख बैठकर, साधक को चाहिए कि वह पावन मन्त्रों से अपने हाथों तथा अंगों का न्यास करे, फिर प्रतिमा को कोमलता से शुद्ध करे और भगवान् के चरण, हाथ तथा मुख धोने के लिए जल के पात्र तैयार करे, प्रत्येक को अपने ही मन्त्र से पावन करते हुए। योगाग्नि तथा अमृत से परिष्कृत अपने ही शरीर में ध्यान करते हुए, वह भगवान् के उस सूक्ष्म रूप पर मन स्थिर करे जो हृदय-कमल में विराजमान है, उसकी अन्तः पूजा करे, और फिर उसी उपस्थिति को बाह्य प्रतिमा में आमन्त्रित करे — धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य रूपी चार पैरों से ध्यान में निर्मित आसन पर भगवान् को प्रतिष्ठित करते हुए। यथाक्रम वह भगवान् के अपने चिह्नों की पूजा करे — सुदर्शन चक्र, पाञ्चजन्य शंख, गदा, खड्ग, धनुष-बाण तथा कौस्तुभ मणि — और फिर उनके पार्षदों की, सम्मुख गरुड़ की, तथा दुर्गा, गणेश, व्यास और विश्वक्सेन की, अपने ही गुरु की, और हर दिशा के रक्षक देवताओं की, प्रत्येक को यथाक्रम सम्मानित करते हुए।

भगवान् का स्नान, शृंगार और भोग

यदि साधन हों, तो भक्त को चाहिए कि वह प्रतिदिन चन्दन, कर्पूर, केसर तथा अगरु से सुगन्धित जल द्वारा भगवान् को स्नान कराए, पावन मन्त्रों का उच्चारण करते हुए। वह प्रेमपूर्वक भगवान् को सुन्दर वस्त्र पहनाए, यज्ञोपवीत, आभूषण तथा तुलसी-माला अर्पित करे; चरण तथा मुख के लिए जल, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य समर्पित करे। अधिक साधन-सम्पन्न भक्त दूध-मिष्ठान्न तथा घृत-पक्व पकवानों का पूर्ण भोग अर्पित कर सकता है; और पावन दिनों में, या सामर्थ्य हो तो प्रतिदिन, भगवान् को सुगन्धित तेल से अभ्यंजित कर, दूध तथा मधु से स्नान करा, रेशमी वस्त्र पहनाकर, गीत तथा नृत्य से उस घड़ी को उनके सम्मान में सजीव कर सकता है।



पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य प्रेमपूर्वक अर्पित करते हुए, भक्त वही नित्य आराधना जारी रखता है जो भगवान् ने स्वयं उद्धव को सिखाई।

पावन अग्नि — भगवान् के तेजोमय रूप का दर्शन

तब भगवान् ने हवन-विधि सिखाई: विधिपूर्वक खोदा और तैयार किया गया यज्ञकुण्ड, प्रज्वलित तथा संगृहीत अग्नि, चारों ओर कुशा से घिरी और पावन जल से सिंचित। उन ज्वालाओं में देखते हुए, साधक को वहाँ भगवान् के तेजोमय रूप का दर्शन करना चाहिए।

तप्तजाम्बूनदप्रख्यं शङ्खचक्रगदाम्बुजैः ।

लसच्चतुर्भुजं शान्तं पद्मकिञ्जल्कवाससम् ॥ ३८ ॥

स्फुरत्किरीटकटकटिसूत्रवराङ्गदम् ।

श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ ३९ ॥

tapta-jāmbūnada-prakhyaṁ śaṅkha-cakra-gadāmbujaiḥ lasac-catur-bhujam śāntam padma-kiñjalka-vāsasam sphurat-kirīṭa-kaṭaka kaṭi-sūtra-varāṅgadam śrīvatsa-vakṣaṣaṁ bhrājat-kaustubham vana-mālinam

अर्थ: वहाँ पावन अग्नि में मुझ पर ध्यान करे — तपाए हुए स्वर्ण के समान तेजोमय, मेरी चार भुजाओं में शंख, चक्र, गदा तथा पद्म, शान्त, कमल-केसर के वर्ण के रेशमी वस्त्र धारण किए, मुकुट, कंकण, करधनी तथा भुजबन्ध से सुशोभित, वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न, तेजस्वी कौस्तुभ मणि वहाँ चमकती हुई, और वनपुष्पों की माला पहने हुए। (स्कन्ध 11, अध्याय 27, श्लोक 38-39)

इस प्रकार भगवान् का दर्शन करते हुए, साधक घृत से सिक्त समिधाएँ अर्पित करे, विधिवत् घृत की आहुतियाँ दे, और मूल मन्त्र तथा पुरुष-सूक्त के सोलह ऋचाओं से आहुतियाँ अर्पित करे, धर्म-आदि को यथोचित सम्मान देते हुए, अन्त में स्विष्टकृत आहुति से यज्ञ को पूर्ण करे।



पावन अग्नि में देखते हुए, साधक भगवान् का तपाए हुए स्वर्ण-सदृश तेजोमय, शंख-चक्र-गदा-पद्माधारी चतुर्भुज रूप देखता है (श्लोक 38-39)।

प्रणाम और भक्त की प्रार्थना

अग्नि में विराजमान भगवान् की पूजा करके तथा उनके पार्षदों को आहुति अर्पित करके, भक्त अपने आसन पर लौटे, मूल मन्त्र का जाप करे, और भगवान् का मुख धोने के लिए जल अर्पित करे, शेष विश्वक्सेन को सुगन्धित ताम्बूल तथा पुष्पवर्षा सहित समर्पित करे। वह भगवान् की लीलाओं का कीर्तन तथा स्मरण करे, आनन्द से नृत्य करे, और कुछ क्षण उनकी कथाएँ सुने-सुनाए। पुराणों से या अपने हृदय से रचित स्तोत्रों द्वारा भगवान् की स्तुति करते हुए, और “हे भगवन्, प्रसन्न होइए” कहते हुए प्रार्थना करते हुए, वह अन्ततः भुजाएँ जोड़कर, दण्ड के समान भूमि पर साष्टांग गिरकर, पूर्ण समर्पण में पुकार उठे।

स्तवैरुच्चावचैः स्तोत्रैः पौराणैः प्राकृतैरपि ।

स्तुत्वा प्रसीद भगवन्निति वन्देत दण्डवत् ॥ ४५ ॥

stavaîr uccāvacaîḥ stotraîḥ paurāṇaiḥ prākṛtair api stutvā prasīda bhagavann iti vandeta daṇḍa-vat

अर्थ: पुराणों से या हृदय से रचित, बड़े-छोटे स्तोत्रों से मेरी स्तुति करके, और “हे भगवन्, प्रसन्न होइए” प्रार्थना करके, भक्त को दण्ड के समान भूमि पर साष्टांग प्रणाम करना चाहिए, पूर्ण समर्पण में। (स्कन्ध 11, अध्याय 27, श्लोक 45)



भगवान् की स्तुति करके और "हे भगवन्, प्रसन्न होइए" प्रार्थना करके, भक्त दण्ड के समान भूमि पर साष्टांग प्रणाम करता है, पूर्ण समर्पण में (श्लोक 45)।

इस आराधना का फल — स्वयं भक्ति

भगवान् ने तब इस सम्पूर्ण विधि के भीतर छिपा हृदय प्रकट किया। जहाँ कहीं और जिस भी रूप में श्रद्धा किसी आत्मा को उनकी पूजा के लिए पुकारे, वहीं उसे पूजा करनी चाहिए — क्योंकि भगवान्, जो विश्व की आत्मा हैं, पवित्र प्रतिमा में, हर जीव में, तथा साधक के अपने स्वरूप में समान रूप से वास करते हैं; सच्ची आराधना उसे कभी विभाजित नहीं करती जो वास्तव में एक ही है। इस क्रियायोग-मार्ग से, चाहे वैदिक हो या तान्त्रिक, आत्मा को उनसे वही सिद्धि प्राप्त होती है जो उसके हृदय को अभीष्ट है। फिर भी भगवान् ने इस विधि को अन्तिम शब्द नहीं बनने दिया: उन्होंने प्रकट किया कि सम्पूर्ण क्रियायोग मूलतः एक गन्तव्य नहीं, अपितु एक द्वार है।

मामेव नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विन्दति ।

भक्तियोगं स लभत एवं यः पूजयेत माम् ॥ ५३ ॥

mām eva nairapekṣyeṇa bhakti-yogena vindati bhakti-yogaṁ sa labhata evaṁ yaḥ pūjayeta mām

अर्थ: जो इस प्रकार, बिना किसी व्यक्तिगत अपेक्षा के, मेरी पूजा करता है, वह भक्तियोग के द्वारा मुझे ही प्राप्त करता है; ऐसा साधक सहज ही स्वयं भक्तियोग को प्राप्त कर लेता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 27, श्लोक 53)

प्रेम से निर्मित मन्दिर, और एक पावन न्यास

भगवान् ने कहा कि जिस भक्त के पास साधन हों, उसे चाहिए कि वह उनके लिए एक दृढ़ तथा चिरस्थायी मन्दिर बनवाए, वहाँ उनकी पावन प्रतिमा प्रतिष्ठित करे, और उसकी नित्य पूजा तथा उत्सवों के निर्वाह हेतु खेत, बाज़ार या ग्राम सदा के लिए दान करे। केवल प्रतिमा की प्रतिष्ठा से ही मनुष्य सम्पूर्ण पृथ्वी का साम्राज्य पा सकता है; मन्दिर बनवाने से तीनों लोकों का आधिपत्य; और इन तीनों — प्रतिष्ठा, मन्दिर तथा सेवा —

के संयोग से मनुष्य भगवान् के ही तुल्य पद को प्राप्त हो सकता है। किन्तु भगवान् ने एक गम्भीर चेतावनी भी दी: जो कोई किसी देवता या भक्त ब्राह्मण को दिया गया दान छीन लेता है, वह करोड़ों वर्षों तक मल खाने वाले प्राणी के रूप में जन्म लेता है — यह दण्ड उस पर भी पड़ता है जो अपराध करता है, उस पर भी जो उसमें सहायक होता है, और उस पर भी जो केवल उसका समर्थन करता है।



जिस भक्त के पास साधन हों, वह भगवान् के लिए चिरस्थायी मन्दिर बनवाता है, इस पावन तथा स्थायी न्यास द्वारा उनके ही वैभव में भागीदार बनते हुए (श्लोक 50-52)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. आराधना के अनेक रूप, किन्तु भाव एक ही है। वैदिक विधि से, तान्त्रिक विधि से, या दोनों के संयोग से, तथा चाहे भक्त पवित्र प्रतिमा की ओर मुड़े, प्रतिष्ठित वेदी की ओर, यज्ञ की ज्वाला की ओर, सूर्य के प्रकाश की ओर, बहते जल की ओर, या हृदय की नीरवता की ओर — हर निष्कपट आराधना उसी एक भगवान् तक पहुँचती है (श्लोक 7-9)।
2. व्यय से बढ़कर है भक्ति। सच्ची श्रद्धा से अर्पित एक लोटा जल भी भगवान् को प्रेमरहित अर्पित भव्य भोज से अधिक स्पर्श करता है; वे भेंट के मूल्य को नहीं, उसके पीछे के हृदय को महत्त्व देते हैं (श्लोक 16-18)।
3. भगवान् सबमें एक-समान वास करते हैं। सच्ची आराधना उन्हें उनकी सृष्टि से कभी पृथक् नहीं मानती — प्रतिमा, प्रत्येक जीव और पूजा करने वाले का अपना अन्तःकरण, तीनों में वे एक ही भाव से विराजमान हैं (श्लोक 48)।
4. विधि-विधान भक्ति में परिणत होता है। सम्पूर्ण क्रियायोग स्वयं में साध्य नहीं अपितु एक द्वार है; निष्काम भाव से अर्पित आराधना सीधे भक्तियोग में, स्वयं प्रेमपूर्ण भक्ति में, ले जाती है — यही वह सच्चा धन है जिसे यह विधि सदा वहन करती रही (श्लोक 49, 53)।
5. भक्त का अन्तिम आश्रय है समर्पण। हर अर्पण के पश्चात्, साधक भगवान् के चरणों में गिरकर जन्म-मृत्यु के सागर के भय को स्वीकार करता है, और केवल उन्हीं की शरण ढूँढता है (श्लोक 45-47)।
6. मन्दिर एक पावन तथा चिरस्थायी न्यास है। भगवान् की आराधना के लिए घर बनवाना तथा उसका पोषण करना उनके ही वैभव में भागीदार बनना है; इस विश्वास को तोड़ना गम्भीर तथा दीर्घकालिक परिणाम लाता है (श्लोक 50-55)।

एक भाक्तेपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय के पश्चात् जो हृदय में शेष रह जाता है, वह सामग्री तथा विधियों की लम्बी सूची नहीं, अपितु उसके पीछे छिपी कोमलता है। भगवान्, जिन्हें किसी से कुछ नहीं चाहिए, स्वयं को गुरु तथा पिता के समान माने जाने की प्रार्थना करते हैं — स्नान कराया जाना, वस्त्र पहनाया जाना, भोग अर्पित होना, और अन्त में समर्पण में आलिङ्गित होना, मानो वे सचमुच उपस्थित हों और उस उँडेले गए प्रेम से प्रसन्न हों। लगभग उसी श्वास में वे कहते हैं कि श्रद्धा से अर्पित एक लोटा जल उन्हें प्रेमरहित भव्य भोज से अधिक स्पर्श करता है। इसमें एक मुक्तिदायक सत्य है: केवल दीपक तथा पुष्प रखने वाला निर्धन, और उद्यान तथा भण्डार दान करने वाला राजा, दोनों भगवान् के समक्ष ठीक उसी भूमि पर खड़े हैं — क्योंकि वे जो ग्रहण करते हैं, वह वस्तु कभी नहीं, अपितु उसे वहन करने वाला प्रेम ही है। इस अध्याय की विस्तृत विधियाँ भक्त तथा भगवान् के बीच कोई दीवार नहीं, अपितु प्रेम को अपने हाथों का उपयोग सिखाने की कला हैं।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, अपने सम्पूर्ण हृदय से भगवान् को कोई छोटी-सी वस्तु अर्पित कीजिए। एक दीपक जलाइए, एक पुष्प रखिए, या भगवान् की किसी प्रतिमा अथवा चित्र के समक्ष — अथवा यदि निकट कोई न हो तो अपने ही हृदय की वेदी पर — धीरे से, बिना शीघ्रता के, मानो वे स्वयं उसे ग्रहण कर रहे हों, एक लोटा जल अर्पित कीजिए। अर्पण करते समय, उनका पावन नाम कोमलता से जपिए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” यह संक्षिप्त, निष्कपट कार्य आपको वही स्मरण कराए जो भगवान् ने उद्धव को सिखाया — कि प्रेम से अर्पित कोई भी भेंट कभी छोटी नहीं होती।

उपसंहार

उद्धव भगवान् से क्रियायोग, पावन आराधना की विधि, सिखाने की प्रार्थना करते हैं, और श्रीकृष्ण पिता के धैर्य से उत्तर देते हैं — उन्हें शुद्धि, प्रतिमा के विविध रूपों, वेदी की तैयारी, भगवान् के स्नान-शृंगार-भोग, पावन अग्नि में उनके तेजोमय चतुर्भुज रूप के दर्शन, तथा भक्त के अन्तिम समर्पण-प्रणाम से होकर ले जाते हैं। हर मोड़ पर भगवान् भाव को वैभव से हटाकर प्रेम की ओर मोड़ते हैं, यह घोषित करते हुए कि श्रद्धा से अर्पित थोड़ा-सा जल भी प्रेमरहित बहुमूल्य भेंट से अधिक तेजस्वी है, तथा यह कि प्रतिमा, सभी प्राणी और पूजक का अपना हृदय — तीनों उनके लिए एक ही आत्मा के रूप हैं। सम्पूर्ण विधि, वे प्रकट करते हैं, स्वयं में साध्य नहीं है: निष्काम भाव से अर्पित आराधना आत्मा को सीधे भक्तियोग में, शुद्ध प्रेमपूर्ण भक्ति में, ले जाती है — वही एक फल जिसकी ओर यह अध्याय सदैव शान्तिपूर्वक संकेत करता रहा।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य वाणी हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), एकादश स्कन्ध, सप्तविंश प्रवचन, पृष्ठ 642–648।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशांसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक से किसी सम्बन्ध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-11-adhyay-27-kriya-yoga-puja-vidhi-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

